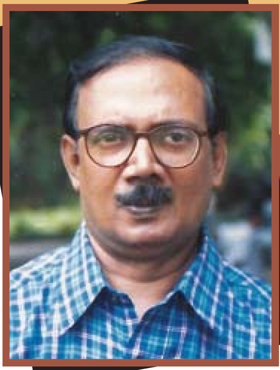


01 काम ही काम, नहीं खेल का नाम...

कल्याण अशोक

खेल और क्रीड़ा बच्चे के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

खेलना किसी भी बच्चे की सहज प्रवृत्ति है। यह सार्वभौमिक है। दुनिया का हर बच्चा खेलने की इच्छा रखता है। बच्चे को खेलना क्यों चाहिए, इस विषय में अनेक रोचक सिद्धान्त हैं। इनमें से एक सिद्धान्त 'सहज, नैसर्गिक प्रवृत्ति' का सिद्धान्त है। खेलना पसन्द करना बच्चे की विशुद्ध रूप से नैसर्गिक प्रवृत्ति है, एक स्वाभाविक शारीरिक क्रिया है। एक और सिद्धान्त के मुताबिक बच्चे में अत्यधिक, अतिरिक्त ऊर्जा होती है और इसे उपयोग में लाने का एकमात्र माध्यम खेलकूद है।

फिर, 'अभिव्यक्ति' का सिद्धान्त है। बच्चे अपनी भावनाएँ प्रकट करना चाहते हैं। यह भी खेलकूद के माध्यम से होता है। खेल के दौरान बच्चे खुशी, उत्साह, गुस्सा, निराशा आदि विभिन्न भावनाएँ प्रकट करते हैं। खेल के माध्यम से वे अनेक नई बातें सीखते हैं। मैदान की कोई भी गतिविधि बच्चे में विभिन्न शारीरिक गुणों के विकास में सहायक होती है – जैसे बेहतर शारीरिक मुद्रा, अंग संचालन, हाथ और आँख में समन्वय आदि। बुनियादी तौर पर बच्चा कुछ भी करते हुए सीखता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में इसे 'मूवमेन्ट शिक्षा' का नाम दिया गया है।

भारत में शिक्षा रट्टा या नकल की पद्धति पर आधारित रही है। बच्चे को अपने समकक्ष साथियों, शिक्षक या माता–पिता का अनुसरण करने की सीख दी जाती है। मगर बच्चे के लिए सीखने की प्रक्रिया का अनौपचारिक होना जरूरी है, और यह केवल खेलकूद के माध्यम से किया जा सकता है, जिसमें वह अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों का अनुसरण करने के लिए आजाद होता है। अनौपचारिक पद्धति पर जोर इस कारण से है कि बच्चे सीमित अवधि के लिए ही ध्यान केन्द्रित रख पाते हैं। औपचारिक रूप से सीखने की प्रक्रिया में बहुत छोटी आयु के बच्चों का ध्यान आसानी से भंग हो सकता है, इसलिए उनकी शिक्षा में अनौपचारिकता बनाए रखना जरूरी है। यह केवल खेलकूद या क्रीड़ा के माध्यम से किया जा सकता है। औपचारिक शिक्षा के साथ इसे सही ढंग से एकीकृत कर लिया जाए तो यह ठोस शैक्षिक व्यवस्था के लिए मजबूत बुनियाद का काम करता है।

कक्षा में बच्चा औपचारिक तौर–तरीकों से सीखता है। अक्सर उसके लिए क्रिया तथा गति में रहने की वह आजादी नहीं रहती जिसे वह सच में स्वयं–रचित प्रक्रिया कह सकता हो। दूसरी ओर, खेल में चाहे वह कुछ विशेष नियमों से बंधा हुआ ही क्यों न हो, वह स्वयं क्रियाओं की शुरुआत कर सकता है।



खेल और क्रीड़ा बच्चे के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। बच्चा टीमवर्क की अच्छाइयों के बारे में सीखता है, खेलभावना को जज्ब करता है, उम्र बढ़ने के साथ–साथ कुछ नया सीखता है, मुश्किल परिस्थितियों का सामना हिम्मत से करना सीखता है; हाथ में लिए काम को एकाग्रता से करना सीखता है; बाँटने, देने और मदद करने के फल का आनन्द उठाना सीखता है। खेलकूद या क्रीड़ा बच्चे को सम्पूर्ण व्यक्तित्व के साथ उभरने में मददगार होते हैं।

प्रचलित धारणा के अनुसार एक व्यक्ति जीतने के लिए खेलता है। परन्तु बच्चों के मामले में यह बात सच्चाई से कहीं दूर है। उन्हें तो बस खेलना और गतिविधि में रहना अच्छा लगता है, वे जीत–हार के बारे में नहीं सोचते। लेकिन जैसे–जैसे वे बड़े होते हैं, प्रतिस्पर्द्धा की भावना उनमें भर दी जाती है। यह शिक्षाविदों को

तय करना होगा कि प्रतिस्पर्द्धा के तत्व पर कितना जोर दिया जाना है। शुरुआत के, व्यक्तित्व–निर्माण के वर्षों में, बच्चे को खेल का मजा लेने और मौज–मस्ती की आजादी होनी चाहिए – इस दौरान जीत या हार का कोई महत्व नहीं होना चाहिए।

कुछ लोगों का मानना है कि बच्चों को जीत–हार के बारे में कुछ तो पता होना ही चाहिए। इस सन्दर्भ में पूर्वी यूरोप, भूतपूर्व सोवियत संघ या चीन के उदाहरण भी दिए जाते हैं जहाँ छोटी आयु में ही बच्चों को स्पोर्टस्–स्कूलों में डाल दिया जाता है और खुराक–नियन्त्रण, अत्यधिक प्रशिक्षण और 'मारक प्रवृत्ति' पैदा करके उन्हें चैम्पियन बनने के लिए तैयार किया जाता है। ऐसे बच्चे किशोरावस्था या वयस्क की आयु तक पहुँचते–पहुँचते मेडल जीतने की मशीनों में तब्दील हो जाते हैं। परन्तु इस प्रक्रिया में वे अपना पूरा बचपन, जीवन का एक शानदार समय खो देते हैं। ऐसे देशों में शरीर पर प्रशिक्षण के अत्यधिक दबाव और बोझ के दुष्परिणामों तथा पूरक–आहार के दुष्प्रभावों की, और मनोचिकित्सकीय समस्याएँ उत्पन्न होने की ढेरों कहानियाँ मिलती हैं। इन समस्याओं से निपटने के लिए मनोवैज्ञानिक परामर्श भी उनका खोया हुआ बचपन वापस नहीं लौटा सकता। यह समझने की जरूरत है कि बच्चा अत्यधिक प्रशिक्षण की पीड़ा सहन करने की परिपक्वता किशोरावस्था या उससे कुछ पहले ही हासिल कर सकता है। भारत में स्थिति इससे बिल्कुल हटकर है। अभिभावकों और शिक्षा के दबावों के चलते बच्चे खेलों में अपनी सहज सम्भावनाओं को हासिल नहीं कर पाते। प्रत्येक अभिभावक सपना देखता है कि उसका बच्चा केवल इस कारण से कि वह टेनिस या क्रिकेट खेलता है और प्रसिद्ध कोचिंग क्लीनिक में जाता है, दूसरा लिएण्डर पेस या सचिन तेंदुलकर बन जाएगा। एक खेल–लेखक के रूप में मैंने अनेक जूनियर तैराकी, एथलेटिक्स और टेनिस आयोजनों को करीब से देखा है जहाँ अभिभावक अपने बच्चों को क्षमता से अधिक प्रदर्शन के लिए बुरी तरह उकसाते या दबाव बनाते हैं।

"मैं कभी भी अपने कॉलेज में किसी खिलाड़ी को कक्षा में बँधे देखना नहीं चाहता। मैं उनसे हमेशा कहता हूँ कि जाओ, अभ्यास करो, हम आपके लिए विशेष कक्षाओं की व्यवस्था करेंगे!"

बच्चों को प्रोत्साहित करने में कोई बुराई नहीं है परन्तु उनसे बहुत अधिक अपेक्षा नहीं की जानी चाहिए, और उन्हें खेल का आनन्द लेने देना चाहिए।

बच्चे के व्यक्तित्व–विकास और कल्याण में खेलकूद तथा क्रीड़ा के प्रभाव को भारत के शिक्षाशास्त्रियों ने कुछ हद तक नजरअन्दाज ही किया है। हैरानी नहीं कि पाठ्यक्रम में खेलों को एक विषय के रूप में शामिल नहीं किया जाता। अनेक स्कूलों में खेलों की उचित सुविधाएँ या खेलों का सही प्रशिक्षण देने के लिए शारीरिक–प्रशिक्षक नहीं हैं। खेलों में श्रेष्ठ बच्चे भी प्रोत्साहन की कमी के कारण खेलों को करियर के विकल्प के तौर पर अपनाने में असफल रहते हैं। खेल अपने सर्वोत्तम रूप में कॉलेज स्तर पर पेशेवर पाठ्यक्रमों में 'खेल कोटा' के अन्तर्गत दाखिला प्राप्त करने के अवसर मात्र के रूप में रह गए हैं।

अनेक प्रतिभावान युवा तैराकों, एथलीटों, बास्केटबाल और क्रिकेट के खिलाड़ियों ने पेशेवर पाठ्यक्रमों में दाखिला प्राप्त करने के बाद खेलों को अलविदा कह दिया। कुछ खिलाड़ी ही शिक्षा और खेल, दोनों के मध्य सफलतापूर्वक सन्तुलन बनाए रखे हुए हैं। ओलम्पिक तैराक बंगलौर की शिखा टण्डन, जो संयुक्त राज्य अमेरिका में बायोटेक्नॉलजी विषय में अपनी मास्टर्स डिग्री पूरा कर रही हैं, का कहना हैः "दोनों के मध्य सन्तुलन बैठाना कठिन है लेकिन एक बार आप निश्चय कर लें तो यह कर सकते हैं। मैं छह घण्टे कक्षा और प्रयोगशाला में व्यतीत करती हूँ, तो मेरा इतना ही समय स्विमिंग पूल में गुजरता है, और मैं दोनों पर ही ध्यान केन्द्रित कर पाती हूँ।'' शिखा इस मामले में भाग्यशाली हैं कि उन्होंने श्री भगवान महावीर जैन कॉलेज में शिक्षा प्राप्त की है जिसके चेयरमैन चैनराज जैन खेलों के प्रति लालायित और उत्साही व्यक्ति हैं, और कॉलेज के खिलाड़ियों को प्रशिक्षण तथा खेल आयोजनों में भाग लेने के लिए समय दिया जाता है। श्री जैन का कहना है, "मैं कभी भी अपने कॉलेज में किसी खिलाड़ी को कक्षा में बँधे देखना नहीं चाहता। मैं उनसे हमेशा कहता हूँ कि जाओ, अभ्यास करो, हम आपके लिए विशेष कक्षाओं की व्यवस्था करेंगे!" बैंगलोर विश्वविद्यालय के शारीरिक–शिक्षा महाविद्यालय के पूर्व डीन श्री एल.आर. वैद्यनाथन का कहना है, "किसी खिलाड़ी द्वारा पेशेवर कोर्स में दाखिला लेने के बाद उससे खेलों में भाग लेने

की अपेक्षा रखना बेमानी होगा, क्योंकि वे डॉक्टर या इंजिनियर बनने के लिए अध्ययन कर रहे हैं न कि ऐसा फुलटाइम खिलाड़ी बनने के लिए, जो पार्टटाइम डॉक्टर बनना चाहता है।''

वैद्यनाथन के विचार में, "खेलों को किसी भी अन्य विषय की तरह जीवन के लिए प्रासंगिक बनाया जाना चाहिए।" उनकी बात बिल्कुल सही है क्योंकि कर्नाटक, पंजाब और केरल जैसे कुछ राज्यों को छोड़कर अधिकतर राज्यों में खेलों को स्कूल–पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाया जाना अभी शेष है।

शिक्षा प्रणाली में खेलों को एकीकृत किया जाए तो बच्चे को एक बेहतर इन्सान बनने में और उसके समग्र विकास में मदद होगी। खेलकूद, मनोरंजन, क्रीड़ा–बच्चे के लिए इन सबका अर्थ एक–सा है। जैसे–जैसे बच्चा बड़ा होता है, और इनकी बारीकियों, विभिन्न छोटे–छोटे अन्तरों को समझने लगता है, ये शब्द उसके लिए विशेष अर्थ हासिल कर लेते हैं।

अधिकतर शिक्षा संस्थाएँ सरकार द्वारा संचालित हैं, इसलिए खेलों की समुचित हिस्सेदारी सहित स्तरीय शिक्षा उपलब्ध करवाने में राज्य की भूमिका को कमतर करके नहीं आँका जा सकता। कर्नाटक राज्य ने एक स्वागत योग्य पहल की है। यहाँ कक्षा 4 से 9 तक खेलकूद को एक विषय के रूप में पढ़ाया जाता है। 10वीं कक्षा में एस.एस.एल.सी. के लिए एक ब्रेक के बाद 11वीं और 12 वीं कक्षाओं में खेलकूद दोबारा एक अनिवार्य विषय हो जाता है। बच्चों को खेल एवं शिक्षा का अच्छा सुमेल प्रदान करने के विषय में शिक्षाशास्त्रियों की जागरूकता में वृद्धि हो रही है। एन.सी.ई.आर.टी. ने भी खेलों को शिक्षा का अभिन्न अंग बनाने के लिए सुझाव दिए हैं। बच्चों के खेल के अधिकार पर यूनेस्को की घोषणा पर भी काम हो रहा है।

विभिन्न सरकारी कमेटियों – जैसे एच.एन. कुंजरू कमेटी, कोठारी कमीशन और राधाकृष्णन कमीशन – ने खेलों और शारीरिक–शिक्षा को अकादमिक शिक्षा के साथ एकीकृत करने की सिफारिश की है। अनेक संस्थानों ने माण्टेसरी स्तर पर प्री–स्कूल खेलों की अवधारणा की शुरुआत की है और इसका एक दिलचस्प उदाहरण श्रीमती शर्ली माधवन कुट्टी द्वारा किया गया सर्वश्रेष्ठ कार्य है, जो दिल्ली में 'मैजिक इयर्स' नामक प्रसिद्ध माण्टेसरी स्कूल का संचालन कर रही हैं।

इन सब प्रयासों के बावजूद हमारे देश में खेल–शिक्षा प्राथमिकताओं की सूची में बहुत ऊँचे स्थान पर नहीं है। केन्द्रीय खेल–मन्त्रालय बच्चों को अच्छी शिक्षा उपलब्ध करवाने पर ध्यान देने की अपेक्षा चैम्पियनों का झुण्ड चाहता दिखाई देता है और यही धारणा समाज के दृष्किोण में दिखाई देती है। इस मनोवृत्ति को बदलने



की जरूरत है क्योंकि खेल के प्रति जागरूक बच्चा स्वस्थ और प्रसन्न ही नहीं रहता बल्कि एक महान खिलाड़ी नहीं बन पाए तो भी एक आदर्श नागरिक के रूप में अवश्य विकसित होता है।

कल्याण अशोक *एक वरिष्ठ पत्रकार हैं। वे इण्डियन एक्सप्रेस, द डैक्कन हेराल्ड तथा द हिन्दू के साथ लम्बे समय तक काम करते रहे हैं। वे द हिन्दू के बंगलौर संस्करण में खेल ब्यूरो के प्रमुख रहे हैं। उन्होंने हिन्दू तथा उसके सहयोगी प्रकाशन स्पोर्टस स्टार के लिए क्रिकेट, टेनिस, बैडमिण्टन, एथलैटिक्स आदि के कई राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय आयोजनों को कवर किया है। खेलों के अलावा वे राजनीति, मनोरंजन तथा अन्य विषयों पर लिखते रहते हैं। आजकल वे स्वतंत्र लेखक की हैसियत से बंगलौर में रह रहे हैं। उनसे kalyanashok@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।*